लोगों की उम्मीदें न्यायालयों से भी टूट रही है और सरकारों से भी

आज के लोकतंत्र में किसी भी सरकार को न तो ईमानदार मीडिया चाहिए, न ही ईमानदार न्यायाधीश। हमारे पास दो ही विकल्प हैं- या तो हम कार्यपालिका की तरह सरकार की हां में हां भरने लग जाएं अथवा हम दोनों मिलकर एक संकल्प के साथ आगे बढ़ें। प्रकृति का नियम है कि जल और मन दोनों ढलान की ओर ही बढ़ते हैं और बढ़ते हुए दिखाई भी देने लगे हैं। अगर अभी मौन रहे तो यह लोकतंत्र फिर सामंतशाही की भेंट चढ़ जाएगा।

जिस प्रकार राजस्थान में जिला कलेक्टरों ने डोडो-पोस्त के आवंटन के लिए झूठी रिपोर्ट्स लिख कर दी अथवा बड़े-बड़े अधिकारी सीना फुलाकर खनन या व्यापमं के भ्रष्टाचार के पक्ष में रिपोर्ट्स बना देते हैं, वैसे ही न्यायाधीश भी सरकार के पक्ष में फैसले देने को मजबूर होने लगेंगे। मौन रहना शुरू तो हो ही गया है। देश के कई पूर्व मुख्य न्यायाधीश भी भ्रष्टाचारियों की सूची में शामिल हो चुके हैं। कारण है न्यायपालिका और मीडिया के बीच बढ़ता अविश्वास। दोनों ही अपनी-अपनी जगह स्वच्छन्द रहना चाहते हैं। अत : बड़े घरानों की तरह इनमें भी परदे के पीछे भ्रष्टाचार अपने पैर पसार रहा है। इस समस्या का एक ही समाधान है- न्यायपालिका और मीडिया की सलामी जोड़ी बने। देखना, भष्टाचार थर्रा जाएगा।

न्यायपालिका करे तय

न्यायपालिका को अब तो यह मान ही लेना चाहिए कि विधायिका और कार्यपालिका मिलकर कार्य करेंगे और न्यायपालिका को तय करना पड़ेगा कि वह स्वतंत्र पहचान बनाए रखना चाहती है अथवा वह भी बहती गंगा में हाथ धोना चाहती है ? इसके बाद ही मीडिया की भूमिका पर बात हो सकती है। विधायिका में दल का नेता, कार्यपालिका में मुख्य सचिव और न्यायपालिका में मुख्य न्यायाधीश अपने-अपने क्षेत्र का भविष्य तय करते हैं। मीडिया में ऎसा कोई नेतृत्व नहीं होता। सब अपने-अपने उद्देश्य के अनुरूप निर्णय करते हैं। इसीलिए संविधान ने मीडिया को अनिवार्यता तो दी, किन्तु चौथा पाया नहीं माना।

आज देश जिस चौराहे पर खड़ा है, भ्रष्टाचार के दरिया में तैर रहा है, आम नागरिक संत्रस्त है और सरकारें मस्त हैं; वहां आशा की एक ही किरण दिखाई पड़ती है- न्यायपालिका और मीडिया की सलामी जोड़ी। ये दोनों मिलकर सार्वजनिक मद्दों पर खुले दिमाग से चर्चा का मार्ग प्रशस्त करें, उसी के अनुरूप परिणाम आने लगें। फैसलों पर सार्वजनिक रूप से टिप्पणियां लिखी जाएं, तो बहुत कुछ सुधार संभव है।

आज तो कई बार कानून अंधा भी दिखाई देता है और गूंगा भी। कई पूर्व मुख्य न्यायाधीश यहां बैठे हैं, जिन्होंने इन परिस्थितियों को जिया है। कई लोग तो मन-मारकर भी जी रहे होंगे। हमें इसके निवारण के लिए छुई-मुई वाली स्थिति से बाहर आना होगा। मीडिया के साथ जुड़ना होगा। आज मीडिया इतने

बड़े-बड़े मुद्दे उठाता है और न्यायपालिका को मौन देखता है तो मन में प्रश्नों का उठना स्वाभाविक भी है। मीडिया एक ही अपेक्षा रखता है न्यायपालिका से, जब भी कोई सरकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने का प्रयास करे, न्यायपालिका इसकी रक्षा को तत्पर दिखाई पड़े।

बनें मीडिया कमेटियां

इसके लिए सभी स्तरों के न्यायालयों में मीडिया कमेटियां बनें, जिनमें केवल न्यायाधीश ही सदस्य हों। इनकी मीडिया संपादकों के साथ सार्वजनिक मुद्दों पर नियमित चर्चाएं हों। पिछली बैठक के बाद किए गए फैसलों पर खुली चर्चा भी हो। मीडिया में उठाए गए मुद्दों पर क्या अमल हुआ, न्यायपालिका में, इस पर भी चर्चा हो। तब कहीं जाकर हमारी स्वतंत्र छवि बन पाएगी। मीडिया यदि दस्तावेज पेश करता है इन बैठकों में, तो उन्हें भी स्व प्रंसज्ञान से याचिका का दर्जा दिया जाना चाहिए। आम नागरिक के पास दस्तावेज नहीं हो सकते। प्रत्येक मुद्दे पर मीडिया भी याचिकाएं दायर नहीं कर सकता । सारा कार्य विश्वास पर चल सकता है।

स्व प्रसंज्ञान ले न्यायपालिका

मीडिया की तरह न्यायपालिका को भी सरकारों का कोपभाजन होने की तैयारी दिखानी पड़ेगी। घड़ी की सुई यहीं आकर ठहर जाती है। मीडिया में उठाए गए बड़े-बड़े मुद्दे आज तो न्यायालय नजर अंदाज ही करने लग गया है। अफसरों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मुद्दे सरकार वापस ले लें, सीबीआई और ईडी जैसे विभाग मुद्दों पर अनिश्चित अवधि तक कुंडली मारकर बैठे रहें। प्रभावशाली लोग बचते रहें और लोग वर्षों जेल में बन्द रहें कोई पूछने वाला नहीं। सरकारें तो यही चाहेंगी। तब समाधान तो मीडिया और न्यायालय की सलामी जोड़ी ही दे सकती है। जब-जब न्यायपालिका तथ्यों से आंखें मूंद कर, जनहित को भी नजरअंदाज कर देती है, तब इसकी मार भी मीडिया को ही खानी पड़ती है। तब सरकारें न्यायपालिका के कंधों पर बन्दूकें रखकर मीडिया पर सीधे गोलियां दागती है।

मुझे यह भी याद है कि किस तरह राजस्थान उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित समाचारों को, स्वप्रेरणा से प्रसंज्ञान लेकर, याचिका मान लेते थे। हाल ही के रामगढ़ बांध, अमानीशाह नाला, जलमहल-मानसागर झील, मोबाइल रेडिएशन और मास्टर प्लान के मामले इसके प्रमुख उदाहरण हैं। मध्यप्रदेश में ड्रग ट्रायल और खान नदी के मामले कोर्ट में पत्रिका के मार्फ त उठे।

आज तो लगता है प्रसंज्ञान लेना उनके अधिकार के बाहर का हो गया। सरकार विरोधी मुद्दों पर जिस प्रकार लम्बे काल तक अनिर्णय की स्थिति रहती है, तब मीडिया क्या भूमिका निभा सकता है। स्वयं मुख्य न्यायाधीश, चाहे किसी न्यायालय स्तर के हों, जब भ्रषचार प्रभावित फैसलों को सुनकर मौन रहते हैं, "अंकल जजेज" के मामलों को चुप रहकर बर्दाश्त करते हैं, अथवा विवेकहीन पूर्वाग्रह से युक्त फैसलों को भी गंभीर नहीं मानते, तब मीडिया क्या कर सकता है? प्रकाशित कर दे तो बड़े घर का अपमान माना जाता है।

खुलेआम पत्रकारों को भेंट!

जब, कहीं भी और कभी भी, किसी सरकार और मीडिया के बीच विवाद होता है, तब न्यायालय भी या तो मौन धारण कर लेते हैं अथवा मीडिया का ही विरोध करते हैं। "पेड न्यूज" के लिए प्रेस परिषद मीडिया की आलोचना तो करेगा, किंतु किसी न्यायाधीश ने सरकार और नेताओं द्वारा दिए जाने वाले प्रलोभन और मीडिया-खरीद के मुद्दों पर किसी नेता या दल को कटघरे में खड़ा नहीं किया। हाल ही में राजस्थान विधानसभा अध्यक्ष ने पत्रकारों को एक-एक हजार रूपए के गिफ्ट वाउचर बांटे। किसी कोर्ट अथवा लोकायुक्त को भी गैर कानूनी नहीं लगा। नेता ही तो "पेड न्यूज" का रास्ता दिखाते हैं। क्या आज तक इस अपराध के लिए किसी का चुनाव रद्द हुआ? इसी प्रकार चुनाव सम्बंधी विवाद पांच साल पड़े ही रहते हैं। जनता को संदेश क्या जाता है?

राजनेताओं को तो विश्वास हो चला है कि वे कार्यपालिका की तरह न्यायपालिका को भी खरीद सकेंगे। थोड़ा समय और लग जाएगा। आज बड़े-बड़े अधिकारी भी नेताओं के इशारों पर बड़े-बड़े झूठे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर देते हैं, मानो वे सरकार के बंधुआ मजदूर हों। कल न्यायपलिका को भी सरकार के साथ होना पड़ जाएगा। तब हमारा लोकतंत्र स्वत: ही मर जाएगा। किसी पाए की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। अभी तो समय है, निर्णय करने का अवसर भी है, सन्तानों के गर्व करने लायक इतिहास पीछे छोड़ सकते हैं। वरना, हमारा भी वही हाल होगा जो कोल्ड स्टोरेज में पड़े बीज का होता है। सड़ जाता है, किन्तु पेड़ नहीं बन पाता। किसी के काम नहीं आ पाता। सार्थकता तो इसमें है कि हमारे कायों के फ ल नई पीढ़ी को खाने को उपलब्ध हों। कोई पेड़ अपने फ ल स्वयं नहीं खाता।

आज जब हम मीडिया की भूमिका की बात करते हैं, तब पहले यह बात भी करनी चाहिए कि मीडिया के प्रति हमारा नजरिया क्या है? इस तथ्य को भी मानना पड़ेगा कि मीडिया पहले लोकहित का ध्यान रखेगा, किसी एक नेता, जज या अधिकारी का नहीं । अत: मीडिया समिति का गठन ही वह रास्ता है, जहां न्यायपालिका के साथ मीडिया की सकारात्मक भूमिका बनी रह सकती है।

(लेखक राजस्थान पत्रिका के संपादक हैं)
(साभार : राजस्थान पत्रिका)